दिलीप चिंचालकर

अमृता शेरगिल

फ़ुलझड़ी की तरह रोशनी कर गई

लगभग सौ साल पुरानी बात है। सौ में पाँच ही कम समझो। नए साल का पहला महीना खत्म होने को था। हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट बर्फ की मोटी रज़ाई ओढ़े पड़ी था। डेन्यूब नदी के ऊपर से बहकर आती हवा इतनी सर्द थी कि खिड़कियों के भी दाँत बज रहे थे। इतनी ठण्ड में परीकथाओं-सा सुन्दर यह देश सफेद-सफेद हो रहा था। मगर सरदार उमरावसिंह मजीठिया के घर में खुशियों की गर्माहट थी। दोपहर की प्रार्थना के लिए गिरजे का घण्टा बजा और खबर मिली कि घर में एक परी ने जन्म लिया है।

बुडापेस्ट युरोप के आकर्षक शहरों में से एक है। अपने इतिहास, कला और संस्कृति के ऊँचे दर्जे के कारण उसकी गिनती विएना और पेरिस के साथ हुआ करती थी। ऐसे समय जन्मी बच्ची को उसके माँ-पिता ने देखा। उसके लम्बे, रेशम जैसे बालों को देखा। उसकी बड़ी-बड़ी उत्सुकता भरी आँखों को देखा। रोना तो उसे आता ही नहीं था। घरवालों ने उसे नाम दिया अमृता।

अमृता अभी एक साल से थोड़ी ही बड़ी हुई थी कि उसे एक जीता-जागता खिलौना मिल गया - उसकी छोटी बहन इन्दिरा। उन्हीं दिनों पहला विश्वयुद्ध शुरू हो गया। बच्चियों को लड़ाई की आँच न लगे इसलिए मारी और उमरावसिंह शहर से साठ मील दूर देहात में रहने चले गए। यहाँ डेन्यूब नदी में एक ऐसा ज़बरदस्त मोड़ था कि पूरे इलाके का नाम डेन्यूबबेण्ड पड़ गया था। आसपास पहाड़ियाँ थीं। जंगल थे। वहाँ बसा था दूनाहरस्ती गाँव। सरदार साहब जब घूमने निकलते तो उनके साथ अमृता, इन्दिरा और एक बड़ा-सा सफेद कुट्टया (हंगेरियाई भाषा में कुट्टया का अर्थ होता है कुत्ता) होता।

अमृता शेरगिल (1913-1941)

अमृता को प्रकृति की सुन्दरता से बड़ा लगाव था। पेड़-पौधों की खूबसूरती, फूलों के सुर्ख रंग और नदी-पहाड़ों के बीच की ढलानों को देखकर वह बार-बार ठिठक जाती। वह पाँच साल की ही थी कि वॉटर कलर से चित्र बनाने लगी। माँ जो कहानियाँ सुनातीं अमृता उन्हीं पर चित्र बना देती। अमृता किसी स्कूल में नहीं गई। एक शिक्षक घर पर आकर उसे अंकगणित, इतिहास और भूगोल पढ़ाता था। इतिहास तो उसे इतना अच्छा लगता कि समय मिलते ही वह क्रेयॉन या वॉटर कलर से इतिहास की घटनाओं के चित्र बनाने लगती। भाषाएँ भी वह चलते-बोलते सीख लेती थी। अमृता के मामा इर्विन बख्ताई भारत के जाने-माने जानकार थे। उमरावसिंह के कहने पर इर्विन मामा ने गाँधीजी के भाषणों का एक संग्रह तैयार किया था। अमृता का रुझान देखकर मामा ने ही शुरुआत में उसे चित्रकारी सिखाई थी।

अमृता अपने आप में गुमसुम रहने वाली लड़की थी। ऐसे बच्चे अक्सर चुपचाप अपने आसपास की चीज़ों को ध्यान से देखते रहते हैं। इससे उनके अन्दर छुपी प्रतिभा निखरती जाती है। अमृता पर उसकी माँ मारी एंतोएनेन की सुनाई परीकथाओं और लोकगीतों का खासा असर पड़ा था। हंगरी के गाँव, गाँववाले, महल, ज़मींदारों की कोठियाँ अमृता के मन में बस गई थीं। किसानों के लम्बे

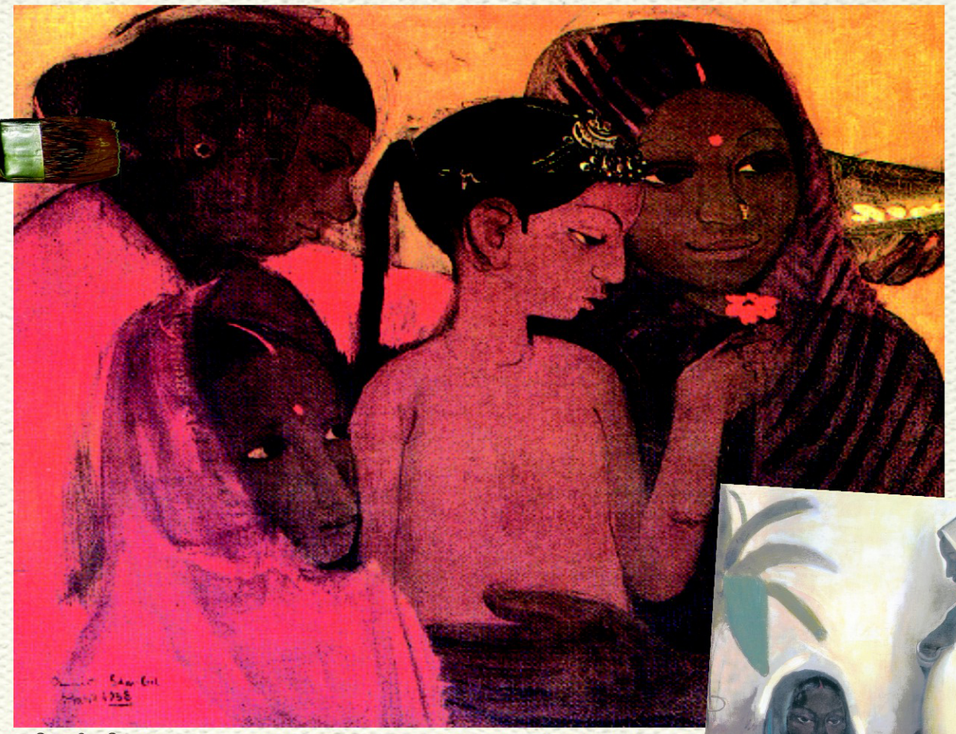

आदिवासी महिला (1938)

लबादों पर चटख रंगों से की गई कढ़ाई अमृता को खूब सुहाती। ऐसे कपड़े पहने हुए अमृता और इन्दिरा की तस्वीर भी है कहीं। इसमें दोनों बहनें एकदम जिप्सी बजारिनें लगती हैं। अमृता सुन्दर दिखने के लिए सजग रहती थी। शायद इसी कारण अपनी छोटी बहन से उसे थोड़ी ईर्ष्या भी रहती थी। क्रिसमस का एक किस्सा अमृता के सात साल के होने के पहले का है। सन् 1920 के बड़े दिन की बात है। माँ ने घर में एक दावत दी थी। मेहमानों में मानसिक रोगों की एक मशहूर डॉक्टर डॉ. उझेल्पी भी थीं। पार्टी चलते-चलते ही डॉक्टर ने अमृता की एक बड़ी कठिन परीक्षा ले डाली। अमृता पसीने से नहा गई। बाद में डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि इस लड़की की प्रतिभा असामान्य है। सावधानी बरतना ज़रूरी है क्योंकि उस पर ऐसे प्रभाव पड़ सकते हैं जो आगे चलकर डारावने हो सकते हैं। बस, अगले ही साल माता-पिता अमृता को लेकर भारत आ गए।

अमृता के पिता सरदार उमरावसिंह बड़े सौम्य व्यक्ति थे। कभी-कभी किसी छोटे रेस्त्राँ में बैठकर वे भारतीय तत्वज्ञान और हिन्दू धर्म पर बातचीत करते थे। उनके एक और दोस्त प्रोफेसर सांगेर केगर अक्सर उनके घर आकर अमीर खुसरो की रुबाइयाँ गाते थे। गोरखपुर ज़िले में उनकी जमींदारी थी। अमृता की माँ का परिवार भी कोई कम सम्पन्न नहीं था। धन-दौलत और कला-संस्कार दोनों में जब उसे लगा कि अमृता चित्रकला को शौकिया तौर पर नहीं, गम्भीरता से लेती है तो वे उसे पढ़ाने के लिए इटली और फ्राँस ले गईं।

युरोप में अमृता ने प्रोफेसर प्येरवेलाँ और प्रोफेसर ल्यूसिए सिमों से चित्रकला सीखी। चित्रकला की दुनिया में ये दोनों जानी-मानी हस्तियाँ थे। वे दोनों अमृता से बहुत प्रभावित हुए। सिमों ने तो यह तक कह डाला कि एक दिन मुझे इस बात पर गर्व होगा कि तुम मेरी छात्रा रही हो। अमृता के चित्र भी उनकी प्रशंसा पर खरे उतरने वाले रहे। उनका प्रदर्शन पेरिस की

दो महिलाएँ

प्रसिद्ध आर्ट गैलरी में होता रहा। युरोप में रहते हुए अमृता ने वहाँ के चित्रकारों के काम बड़ी बारीकी से देखे और समझे। उसे लगा कि वहाँ रहकर वह कुछ अनोखा नहीं कर पाएगी। अमृता ने कहा कि मैं हिन्दुस्तान का खून हूँ और हिन्दुस्तान की आत्मा कैनवास पर उतारकर ही सन्तुष्ट हो सकूँगी। युरोप तो पिकासो, मनीस और ब्राक का है। मेरा तो केवल भारत है। और 1934 में वह सचमुच भारत आ गई।

उमरावसिंह नहीं चाहते थे कि उनकी मनमौजी बिटिया भारत आए। क्योंकि हंगरी के रहन-सहन और भारत के तौर-तरीकों में काफी फर्क था। अमृता सिर्फ चित्रकार नहीं बनना चाहती थी। चित्रकारी के रास्ते वह कुछ अनोखा करना चाहती थी और उसकी सम्भावना उसे भारत में ही दिखाई दी। यहाँ के दीन-हीन, देसी लोगों को अमृता से पहले

किसी ने कैनवास पर जगह नहीं दी थी। अमृता के चित्रों ने भारत में खूब खलबली मचाई। अच्छे तो वे थे ही, उनमें नयापन भी था। इन्हीं में अमृता को अपनी शैली मिल गई।

अमृता खुर्राट भी बहुत थी। उसने अपनी चित्रकारी का एक बहुत ऊँचा दर्जा तय कर रखा था। उसने सालाना प्रदर्शनी के लिए शिमला की आर्ट सोसायटी को अपने चित्र भेजे। उन्होंने चित्रों में से पाँच रखकर पाँच लौटा दिए। अमृता ने इन लौटे चित्रों को पेरिस भेज दिया। यहाँ उनमें से एक चित्र स्वीकृत हो गया। इधर शिमला वालों ने अमृता के एक चित्र पर उसे

ऊँट (1941)

महाराज फरीदकोट पुरस्कार दिया तो अमृता ने उसे लौटा दिया। साथ में यह भी लिखा कि यह पुरस्कार किसी ऐसे ज़रूरतमन्द चित्रकार को देना जो आपके घिसे-पिटे तरीके से चित्र बनाता हो।

ऐसी ही बात उसने अपने घरवालों के साथ भी की। एक बार वह अपने चाचा का चित्र बना रही थी तो घर के लोगों ने केवल इतना चाहा कि उसे वह सहज रंग और रेखाओं में बना दे। जिससे चाचा का चेहरा पहचाना जा सके। यानी अपने मनमाने तरीके से उसे आड़ा-तिरछा कर उसका मॉडर्न आर्ट न बना दे। अमृता ने परिवार वालों की पसन्द का चित्र बना तो दिया पर अपने पिता से यह भी कह दिया कि देखा, ज़रूरत पड़ी तो वो घटिया चित्र भी बना सकती है।

अमृता खुद काफी रईसी में पली थी मगर उसे अमीर लोगों के तौर-तरीके यानी बेकार में नाक-भौंह सिकोड़ना पसन्द नहीं था। एक जगह अमीर लोगों की पार्टी में खाने की मेज़ पर

हंगेरियाई बाज़ार (1938)

तश्तरी भर मिर्चें सजाकर रखी थीं। मिर्चें सबको ललचा रही थीं लेकिन कोई उन्हें खा नहीं रहा था। इसलिए कि मिर्च तीखी लगने पर आँख-नाक बहने लगेगी और फज़ीहत हो जाएगी। अमृता से रहा न गया। उसने एक बड़ी-सी मिर्च को उठाकर चबा डाला और लोगों से भी खाने का आग्रह करने लगी। मिर्च तो मिर्च थी। अमृता सहित हर खाने वाला सी-सी करने लगा और सभी हँस-हँस कर लोटपोट हो गए। अमृता की इस बेतकल्लुफी से पार्टी में जान आ गई।

सन् 1938 में अमृता फिर हंगरी चली गई और अपने ममेरे भाई डॉ. विक्टर एगॉन से ब्याह कर साल भर में भारत लौट आई। पहले कुछ दिन दोनों शिमला में रहे फिर अपने पिता की रियासत सराया, गोरखपुर में रहे। अमृता को लगा कि शायद लाहौर में विक्टर की डॉक्टरी अच्छी चलेगी इसलिए वे दोनों वहाँ रहने चले गए। नए घर में पहुँचते ही अमृता ने अपने चित्रों की एक प्रदर्शनी तय कर ली। उसका इरादा था कि दर्शकों से उनकी राय जानने के लिए वह भेष बदलकर, चेहरे पर नकली दाढ़ी-मूँछें लगाकर और सिर पर साफा पहनकर एक सरदार की तरह उनसे बातें करेगी। परन्तु ऐसा करने से पहले ही वो बीमार हो गई और तुरत-फुरत चल बसी।

उम्दा चित्रकार और खुश मिजाज़ अमृता ने बहुत छोटी उम्र पाई - दो विश्वयुद्धों, 30 जनवरी 1913 और 5 दिसम्बर 1941 के बीच उसकी दुनिया खत्म हो गई। इतने कम समय का हिसाब लगाए तो बचपन के आठ साल छोड़कर बाकी सारा जीवन उसने घुमक्कड़ी में ही बिता दिया। फिर भी भारत के चित्रकारों में उसका नाम आज भी बहुत ऊँचा है। चकमक